चिन्ता नहीं चिन्तन करो

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

किसी महापुरुष ने ठीक ही कहा है कि व्यथा नहीं व्यवस्था करो, चिन्ता नहीं चिन्तन करो। चिन्तन चित्ता से भी खतरनाक होती है जो मनुष्य को भीतर ही भीतर जलाकर राख कर देती है। चिन्ता व्यक्ति को अवसाद में डाल देती है। यह मानवीय अवगुण है। व्यक्ति चिन्ता करना नहीं चाहता, किन्तु चिन्ता हो जाती है। मन भूत वर्तमान और भविष्य की और देखकर कभी–कभी चिन्तित हो जाता है। चिन्तन–मनन और निदिध्यासन तीनों करके मनुष्य को अपनी व्यथा दूर करनी चाहिए। किसी विषय पर गम्भीरता पूर्वक चिन्तन करना चिन्तन कहलाता है। मनन का अर्थ है किसी विषय पर गम्भीरता पूर्वक सोचना और बार–बार विचार करना निदिध्यासन कहलाता है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज के सुख दुःख की अनुभूति उसे समय–समय पर होती रहती है। जब वह चिन्तन करता है कि अब मैं क्या करूं? नौकरी, जीविका निर्वाह की चिन्ता उसके सामने खड़ी हो जाती है। किसी कार्य को करने के लिए एक निश्चित कार्य योजना का होना आवश्यक होता है। चाहे सरकार की योजनाएं हों अथवा व्यक्ति का अपना कोई कार्य, सभी के लिए समय प्रबंधन और कार्य कुशलता की आवश्यकता होती है। शिक्षा, चिकित्सा, शादी, विवाह आदि कार्यों को करने के लिए मनुष्य को एक निश्चित कार्य योजना बनानी पड़ती है। चिन्तन मनन और प्रबंध करके उसे पूरा करना पड़ता है। कार्य का विभाजन करके परस्पर जिम्मेदारियों का निर्वाह करना पड़ता है। इससे कार्य का बोझ हल्का हो जाता है जिससे कार्य की चिन्ता नहीं होती। कहा गया है– अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता। अर्थात् यदि एक आदमी किसी कार्य को करता है और कार्य निश्चित समय में पूरा नहीं हो पाता तो चिन्ता होना स्वाभाविक है। यदि कार्य पूरा नहीं होता तो मनुष्य अवसादग्रस्त हो जाता है। इसमें पैसा भी अधिक खर्च होता है और मानसिक तनाव की स्थिति ही आ जाती है।

प्रायः यह देखा जाता है कि परिक्षा के समय विद्यार्थी घबराहट और चिन्ता में आकर अवसादग्रस्त हो जाते हैं और कुछ विद्यार्थी तो आत्महत्या कर लेते है। यह बहुत ही गम्भीर समस्या है। परिक्षा के समय विद्यार्थियों को चिन्तित नहीं होना चाहिए। कार्यक्रम के अनुसार विषय को ध्यान में रखकर गम्भीरता पूर्वक अध्ययन करना चाहिए। चिन्ता नकारात्मकता की तरफ ले जाती है और मन को शिथिल कर देती है। इसलिए चिन्ता को त्यागकर कार्य में लग जाना चाहिए। कठिनाईयां स्वयं झुक जाती है। मनस्वी व्यक्ति कभी चिन्ता नहीं करता। जो सामने आता है, डटकर उसका सामना करता हैं और कठिनाईयों पर विजय प्राप्त कर लेता है। सत्य हमारे अंदर रहता है और वाणी के द्वारा उसका व्यवहार किया जाता है। पहले चिंतन फिर मनन फिर वाणी का व्यवहार चिंतन व्यवहार से पहले होता है। जब आदमी आत्मा के स्तर पर जीवन व्यतीत करने लगता है तब वह सत्य भाषण करता है। भगवान बुद्ध, भगवान महावीर स्वामी सत्य की खोज में जगह–जगह भटके, घोर साधन की। किन्तु अंत में उन्होंने यह निश्चय किया कि सत्य बाहर नहीं अंदर है। इसलिए आंतरिक सत्य को देखकर और समझकर उसको प्राप्त करने का प्रयास किया और अंत में उस सत्य को प्राप्त किया– अप्पणा सच्च मे सेज्जा मेत्ति भूयेसु कप्पए।

सभी प्राणियों के साथ मैत्री भाव रखना और सबको समान देखना सबसे बड़ा सत्य है। इसे आत्म तुला का सिद्धांत कहते हैं। प्राणियों को सुख प्रिय है इसलिए उसका वियोग नहीं करना चाहिए और दुःख अप्रिय है इसलिए उसका संयोग नहीं करना चाहिए। इष्ट का वियोग और अनिष्ट का संयोग होने पर दुःख की अनुभूति होती है। अनुकूल और प्रतिकूल दशाओं में सुख और दुःख की अनुभूति होती है। जो व्यक्ति अपने को या अपनी आत्मा को जानता है वह अन्य प्राणियों की हिंसा नहीं करता। जड़ और चेतन का यह अंतर ही वास्तविक सत्य का ज्ञान है। आत्मा अमूर्त है और भौतिक तत्व मूर्त। आत्मा और भौतिक तत्वों में भेद है। आत्मा भिन्न और शरीर भिन्न है। गीता में भी बताया गया है कि आत्मा पूर्ण सत्य है। आत्मा को न तो जलाया जा सकता है न भिगोया जा सकता है। वायु न तो आत्मा को सुखा सकती है और न ही पानी इसको गीला कर सकता है। आत्मा सच्चिदानंद स्वरूप है। आत्मा के साथ कर्म का बंधन होने पर आत्मा पर कर्मों का आवरण पड़ जाता है। जैसे एक मेज पर रखी हुयी वस्तु

को चादर से ढ़क दिया जाये तो वस्तु का स्वरूप आंखों से ओझल हो जाता है किन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि मेज पर वस्तु ही नहीं है। जैसे ही चादर को हटाया जाता है वस्तु का स्वरूप नेत्रगोचर होने लगता है। शरीर आवरण है और आत्मा इसका सत्य जो प्राणी इस सत्य को जानता है वह कभी नहीं मरता। कबीरदास महाज्ञानी थे। उन्होंने इस सत्य को पहचान लिया था। उनका कहना था कि आत्मा अजर–अमर है। वे कहते है– हम न मरव मरिहैं संसारा हमको मिला जियावन हारा। अर्थात् हमें आत्मा का पूर्ण ज्ञान हो गया है। आत्मा कभी नहीं मरती। विनाश तो शरीर का होता है, यही पूर्ण सत्य है। जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर नये वस्त्रों को धारण कर लेता है, वैसे ही आत्मा पुराने शरीर को त्यागकर नये शरीर को धारण करती है। आत्मा शाश्वत है और शरीर नश्वर। यही पूर्ण सत्य की खोज है। इसी सत्य को संत लोग खोजते हैं और अमर हो जाते हैं। महापुरुष समस्याओं पर चिन्तन करते हैं, चिन्ता नहीं करते। चिन्ता भय को जन्म देती है और चिन्तन अभय को जन्म देता है।